प्रवचन-५१, श्लोक-७१, गाथा-४७-४८, मंगलवार, श्रावण शुक्ल १५, दिनांक २६-०८-१९८०

नियमसार, गाथा ४७ थोड़ा चला है, फिर से थोड़ा लेते हैं। **जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,...** मोक्ष पाने के योग्य अति भव्यजीव हुए। **वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए...** संसार के किसी भी विकल्प से थकान लगी हो, दुःख लगा हो, उससे थके हुए, **परमागम के अभ्यास द्वारा...** आहाहा! गुरु के प्रसाद से **परमगुरु के प्रसाद से...** इतना, यह तो निमित्त है। कथनशैली तो दूसरी कैसी आवे? बाकी किसी निमित्त से पर में कुछ होता नहीं। क्रमबद्ध होता है, वह तीन काल में बदलता नहीं। क्रमबद्ध रखकर सब बात है।

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर-क्रमबद्ध जिस समय में जो होती है, उस समय में होनेवाली होती है। उसमें यह कहते हैं कि गुरु के **प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** अपनी पर्याय उस समय में प्राप्त होने की थी, उसमें गुरु निमित्त हुए, परमागम का अभ्यास उसमें निमित्त हुआ। **सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये कि जो सिद्धात्मा कार्यसमसाररूप हैं,...** आहाहा! कार्य प्रगट हुआ। सिद्ध की पर्याय पूर्ण प्रगट होने के योग्य थी, वह प्रगट हुई।

सबेरे आया था कि आत्मा महा समुद्र, गुण का समुद्र है, गुण का भण्डार है। अनादि-अनन्त सत्ता का धारक है परन्तु सिद्ध की पर्याय से अधिक पर्याय अब करने की रही नहीं। अन्तिम में अन्तिम सिद्ध पर्याय हो गयी। आत्मा में अन्दर चाहे जितना सामर्थ्य हो... आहाहा! उसमें अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है, तथापि उसकी पर्याय में सिद्ध पर्याय जितनी मर्यादा रहती है। सिद्ध पर्याय से आगे नहीं जाती। आहाहा! ऐसी मर्यादा है। द्रव्य की मर्यादा ही इतनी है। उसमें जितने गुण हैं, उतने गुण, पर्याय में पूर्ण सिद्धस्वभाव में (प्रगट) हो जाते हैं। उसमें फिर पर्याय में वृद्धि हो (या) सिद्धभगवान बहुत काल रहे,

करोड़ वर्ष-अरब वर्ष रहे, इसलिए पर्याय में गुण बढ़ते हैं-ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्तु का स्वभाव ऐसा ही है।

वे **कार्यशुद्ध हैं।** भगवान कार्यशुद्ध हैं। कायम अपेक्षा से शुद्ध हैं। **जैसे वे सिद्धात्मा हैं वैसे ही शुद्धनिश्चयनय से...** भगवान **भववाले (संसारी) जीव हैं।** आहाहा! पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे। पूर्णानन्द का नाथ आनन्दकन्द की दृष्टि से संसारी जीव भी सिद्ध समान हैं। आहाहा! सिद्ध में और संसारी प्राणी में निश्चयनय की शक्ति के सामर्थ्य के कारण अन्तर नहीं है। आहाहा! ऐसी प्रतीति हो जाये, तब तो स्वसन्मुख हो जाये। आहाहा! सिद्ध की पर्याय जैसी संसारी पर्याय है, वैसी ही है। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' आहाहा! भाषा काम करे नहीं। चाहे जितनी विद्वत्ता हो, वह इसमें काम नहीं करती। अन्तर में पर्याय में द्रव्यस्वभाव सन्मुख झुकना (हो) तो वह संसारी पर्याय भी सिद्ध समान ही है। आहाहा! पर्याय, पर्याय, ! हों! आहा! ऐसे तो शक्तिरूप से लेना है। प्रगट कहाँ है ?

उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की... गुण शब्द से पर्याय (लेना)। समकित आदि पर्याय, वह पर्याय है। उसकी **पुष्टि से तुष्ट हैं...** आहाहा! संसारी जीव भी, सिद्ध के आठ गुण हैं—ऐसे गुण से पुष्ट हैं, पुष्ट हैं। आहाहा! उनका स्वभाव ऐसा ही है। भले प्रगट में दिखाई न दे परन्तु वस्तुरूप से तो सिद्धसमान शक्ति और पूरा स्वभाव है। जैसे सिद्ध के आठ गुण व्यवहार से हैं, निश्चय से अनन्त गुण हैं; वैसे आत्मा में अनन्त गुण शक्तिरूप से हैं, उन्हें व्यक्तिरूप से करने की सामर्थ्य है; इस कारण से सिद्धसमान वह संसारी है। आहाहा!

हम क्या करें ? हम पंचम काल में जन्में हैं, गरीब घर में आये हैं, आजीविका और रोटियाँ नहीं कि हम धर्म करें, इस बात को यहाँ अवकाश नहीं है। इस बात को यहाँ अवकाश नहीं है, प्रभु! चाहे जिस समय में, जहाँ देखे उस क्षेत्र में और काल में तू सिद्ध समान प्रभु ही है। आहाहा! यह बात कैसे बैठे ? जिसे अनन्त पर्याय प्रगट हुई है—ऐसा ही तू है। अभी संसार में ऐसा ही है। आहाहा! विश्वास, प्रतीति, भरोसा (ला)। ओहो! यह जो काम करते हैं, वह पहला अपूर्व काम है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ सिद्धसमान अभी ही है। आहाहा!

कहा न ? वे **आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं...** तुष्ट हैं **(सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान,**

अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु तथा अव्याबाध, इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है)। ऐसा जीव आनन्दमय है। आहाहा! कहाँ संसारी, कहाँ सिद्ध! वह तो पर्याय-अवस्था में पर्याय तो एक समय की है। एक समय की पर्याय में क्या है! पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु के स्वाद के समक्ष दुनिया की किसी चीज़ का स्वाद-महिमा ले जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा! उसके स्वाद के समक्ष दुनिया की कोई भी चीज़ विस्मयरूप से, अधिकरूप से, महिमारूप से हो जाये, ऐसी बात है नहीं। आहाहा!

मुनि को पता नहीं होगा-यह सब काम करते हैं और ये सब जीव तो संसारी हैं? बापू! ये संसारी और सिद्ध तो पर्याय की अपेक्षा से बात है। द्रव्य अपेक्षा से तो अन्दर शुद्ध चिदानन्द है। आगे कलश में कहेंगे। आहाहा!

श्लोक-७१

(अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

(अनुष्टुप्)

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।
नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम्।।७१।।

(वीरछन्द)

जो सुबुद्धि या दुर्बुद्धि हों पहले से ही शुद्ध अहो!
किस नय से फिर भेद करूँ मैं, उन दोनों में तुम्ही कहो।।७१।।

श्लोकार्थः—**जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ ? (वास्तव में उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।)।।७१।।**

श्लोक-७१ पर प्रवचन

(अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।
नयेन केनचित्तेषां भिदां कामपि वेद्म्यहम्।।७१।।

अरे रे! **जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है,...** आहाहा! कुबुद्धि को-मिथ्यादृष्टि को और सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! प्रथम ही भगवान शुद्ध पड़ा ही है। मिथ्यादृष्टि तो... एक समय की पर्याय (वस्तु में नहीं, वस्तु के) ऊपर है, वस्तु तो सिद्धसमान पूरी परमात्मदशा है। यह बात बैठना... आहाहा!

जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही... जिन कुबुद्धियों को प्रथम से ही, मिथ्यादृष्टि को पहले से ही! आहाहा! संसार का अभाव करे, फिर सिद्ध होगा, यह बात यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो कुबुद्धियों को प्रथम से ही (लेते हैं)। आहाहा! भगवानस्वरूप सिद्धसमान अन्दर प्रथम से ही है। **उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहा! ऐसा करके जरा व्यवहारनय की तुच्छता बतायी है। व्यवहारनय की कुछ गिनती ही नहीं। मैं किस नय से कहूँ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! प्रभु! तू (तुझमें) और सिद्ध में किस नय से मैं अन्तर करूँ? अरे! किस नय से? तो व्यवहारनय से तो कहो। व्यवहारनय कुछ गिनती में नहीं। आहाहा! आहाहा!

(अज्ञानी) व्यवहार-व्यवहार करते हैं, यहाँ तो आचार्य कहते हैं **जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** उसमें किस नय से भेद जानूँ कि यह संसारी और यह सिद्ध? आहाहा! गजब बात है। मुनियों की वाणी, सन्तों की-दिगम्बर सन्तों की वाणी के पास सारा जगत पानी भरे! ऐसी वाणी की गम्भीरता है। कितनी गम्भीर बात की है! मैं किस नय से भेद करूँ? व्यवहारनय की तो मानो गिनती ही नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा है। आहाहा!

प्रभु! तू परमात्मा है न! सिद्ध और परमात्मा दोनों में मैं किस नय से भेद कहूँ? आहाहा! व्यवहारनय से कहना, उसे तो उड़ा दिया, मस्करी की है। आहाहा! यह अन्दर

आता है कि व्यवहारनय की मसकरी की है। नियमसार में पहली बारह गाथा के पीछे आता है। हास्य किया है, हास्य। अरे! प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ है न! तेरी सत्ता पूर्ण अनादि से है। उसमें कुछ फेरफार हुआ ही नहीं। तेरी नजर नहीं जाती है। नजर जाने से तू और सिद्ध दोनों एक ही है। आहाहा! नजर के पुरुषार्थ में पूरा भगवान दिखता है।

यहाँ तो मुनिराज (कहते हैं कि) किस नय से (अन्तर) जानूँ? **(उनमें कुछ भी भेद...)** आहाहा! गजब बात है प्रभु! भाषा भले थोड़ी है।

श्रोता : कर्म सापेक्ष नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म सापेक्ष यहाँ नहीं। सेठाई के समक्ष रंकाई नहीं। आहाहा! सेठ अर्थात् श्रेष्ठ। आहाहा! एक नय से च्युत है-ऐसा आया है। वह नय शुद्धनय को ही गिनने में आया है। व्यवहारनय को तो मसकरी करके उड़ा दिया है। जिसे व्यवहार गले पड़ा है, उसे यह सिद्धसमान चैतन्य की बात बैठना कठिन है, प्रभु! यहाँ तो इतने शब्दों में तो बहुत भरा है। आहाहा! क्या कहा?

जिन सुबुद्धिओं को... सम्यग्दृष्टि को, **कुबुद्धिओं को...** मिथ्यादृष्टि को। **पहले से ही शुद्धता है,...** आहाहा! यह तो ठीक परन्तु **उनमें...** दोनों में। **उनमें कुछ भी भेद... कुछ भी भेद, मैं किस नय से जानूँ?** किस नय से जानूँ - ऐसा कहते हैं। कथन तो ठीक, कथन कौन करे? आहाहा! गम्भीर है, भगवान! इतने शब्दों में गम्भीरता है। आहाहा! कहाँ प्रभु सिद्ध और कहाँ प्रभु तू आत्मा! जो आत्मा में चीज़ नहीं, उसकी यहाँ गिनती गिनी नहीं और किस नय से मैं दोनों को अलग मानूँ? आहाहा! व्यवहार से अलग मानना, उसे ही उड़ा दिया। आहाहा! उसे भी गिनती में नहीं लिया। नहीं तो ऐसा क्यों कहा? एक नय से ऐसा है, दूसरे नय से अन्तर है (-ऐसा कहते)।

यहाँ तो कहते हैं **उनमें...** (अर्थात्) सम्यग्दृष्टि में और मिथ्यादृष्टि में प्रथम से ही सिद्धसमान भगवान अन्दर है। **कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहाहा! गजब बात है। अन्दर कितना भरा है! गम्भीरता (बहुत)। कहते हैं, चाहे तो संसारी निगोद के जीव हों, आहा! चाहे तो सिद्ध हों, दोनों में कुछ भी भेद किस नय से जानूँ? व्यवहारनय तो मानो कुछ है ही नहीं-ऐसा कहते हैं। व्यवहार तो कुछ है ही नहीं, गिनती नहीं। व्यवहार अभूतार्थ कहकर, गौण करके उड़ा दिया है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ दृष्टि में आया, अब कहते हैं कि मैं मुझमें और दूसरे आत्मा में (किस नय से भेद जानूँ) ? ख्याल में आने के बाद की बात है, हों! मिथ्यात्व के काल में मैं किस नय से कहूँ, यह नहीं। आहाहा! यहाँ तो (अज्ञानी) दया, पालो, व्रत करो, भक्ति करो, तप करो, ऐसी प्ररूपणा (करता है) और बनियों को धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती। पूरे दिन पाप। सुनने (जाये), घण्टे भर सुने, सिर पर जो कहे जय नारायण! हो गया। क्या कहते हैं ? उसमें क्या अन्तर है ? (यह कुछ समझते नहीं)। आहाहा! इतने शब्द में... लालचन्दभाई! गजब बात है। क्या कहें ? जैसा अन्तर में भासित होता है, उतनी भाषा नहीं आती। आहाहा! आहाहा!

कुबुद्धि और सुबुद्धि में प्रथम से ही भगवान शुद्ध विराजता है, उन्हें कुछ भी, आहाहा! **उनमें कुछ भी...** कुछ भी... आहाहा! **भेद मैं किस नय से जानूँ ?** आहाहा! गजब किया है! अपने आनन्द के विकास के समक्ष सभी जीव आनन्दमय है – ऐसा देखते हैं। अपने आनन्द और ज्ञानमय प्रभु के समक्ष सभी आत्मा भगवान तुल्य भासित होते हैं। मैं किस नय से भेद मानूँ? कहते हैं। आहाहा! ताराचन्दजी! कहाँ गये हमारे दूसरे ताराचन्दजी ? आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! भगवान की गम्भीरता बहुत है। आहा!

श्रोता : आपमें ही ऐसे भाव खोलने की सामर्थ्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें सामर्थ्य है न, नाथ! प्रभु! तू भगवान है न, नाथ! तुझे अल्प कहकर बुलाना कलंक है। आहाहा! यहाँ तो यह कहा न ? मैं किस नय से अल्प मानूँ ? आहाहा! प्रभु! यहाँ तो पूर्णानन्द का नाथ एक समय में जैसी सत्ता है, जैसी सत्ता सिद्ध की है, वैसी सत्ता तेरी है, ऐसा जहाँ भान हुआ (तो) मैं किस नय से भेद जानूँ ? किस नय से जानूँ ? आहाहा! प्रभु! व्यवहारनय से जानूँ, ऐसा इतना तो थोड़ा रखो! पण्डितजी! सब नय उड़ा दिये। व्यवहारनय तो रखो। यह व्यवहारनय तो आ गया क्योंकि कुबुद्धि और सुबुद्धि इतना भेद तो कर दिया। आहाहा!

अब दोनों का जो आत्मा है, दोनों भगवान आत्मा हैं। मैं किस नय से (भेद जानूँ)। आहाहा! गजब बात है। दिगम्बर सन्तों के शब्द कोई गजब करते हैं। आहाहा! ये दो-चार शब्द हों परन्तु अन्दर ठेठ उतार देते हैं। प्रभु! तुझे कहीं रुचता नहीं। यहाँ अन्दर रुचे— ऐसी चीज़ तो तेरे पास पड़ी है न, प्रभु! और जिसे रुचता नहीं तो भी मैं अन्तर की शुद्धता में किस नय से भेद जानूँ। आहाहा! गजब है न ? आहाहा! ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़ता

है। व्यवहार है, व्यवहार है (-ऐसा पुकारे।) आस्रव अधिकार में आता है, नय से च्युत। ऐसा नहीं कहा कि निश्चयनय से च्युत, क्योंकि उसे ही नय गिनने में आया है। मूल गाथा में टीका में है। नय से च्युत होता है तो वहाँ ऐसा नहीं कहा कि व्यवहारनय से च्युत होता है। आहाहा! च्युत होता है, यह बात ही नहीं, कहते हैं। आहाहा!

अन्तर का नाथ अप्रतिहत भाव से पड़ा है। अनादि सत्ता के सामर्थ्य से बिराजमान अपने चैतन्यधाम में भगवान बिराजता है। कुबुद्धि और सुबुद्धि में मैं किस नय से भेद कहूँ? कहूँ, ऐसा भी नहीं कहा। कहूँ भी कहा नहीं? किस नय से भेद जानूँ? आहाहा! गजब बात है, प्रभु! अन्तर चैतन्यभगवान पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति (स्वरूप है)। आहा! उसे त्रिकाल कोई दखल नहीं होती। सातवें नरक में अनन्त बार रहा, निगोद में अनन्त बार गया। परन्तु उस चीज़ में कोई फेरफार नहीं होता। मैं किस नय से भेद जानूँ? आहाहा!

निगोद के जीव और सिद्ध जीव... आहाहा! मैं कुछ भी भेद, दोनों में कुछ भी भेद... आहाहा! गजब बात है। उड़ गयी... बात ही उड़ा दी। मोक्ष आत्मा ही है, बस! आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... भगवान सब आत्मा। आहाहा! कहो, सेठ! ऐसी बात है। आहाहा! इसकी गम्भीरता अन्दर कही नहीं जा सकती है। क्या कहना चाहते हैं - वह भाव ख्याल में आता है। आहाहा! व्यवहारनय को तो उड़ा दिया, मानो कि है ही नहीं। आहाहा! और (अज्ञानी) पूरे दिन व्यवहारनय... व्यवहारनय (करता है)। ऐसा करो और वैसा करो, ऐसा करो... प्रभु! परन्तु ज्ञानस्वरूपी भगवान जानने का काम करे या करने का काम करे? आहाहा! भगवान को कर्ता(पना) सौंपना, वह चक्रवर्ती से कचरा निकालने का बतलाने जैसा है। वासिन्दु को क्या कहते हैं? कचरा। आहाहा!

प्रभु तेरी महिमा का पार नहीं। इस शब्द में तो तुझे प्रभु साक्षात् खड़ा रखा है। आहाहा! किस नय से मैं तुझे हीन कहूँ? आहाहा! प्रभु! किस नय से मैं **कुछ भी...** भाषा पढ़ी। **उनमें कुछ भी...** आहाहा! **भेद मैं किस नय से जानूँ?** प्रभु! व्यवहारनय कहाँ गया? नाथ! आहाहा! व्यवहार से इतना अन्तर है, वह कहाँ गया? गया उसके घर में। अन्तर घर में कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! कितने ही श्लोक तो इतने गम्भीर हैं कि गम्भीरता भासित होती है, उतनी भाषा नहीं आती, भाषा नहीं हो सकती। आहाहा!

इस शब्द में इतनी गम्भीरता भरी है। अकेला शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध.. पूरी

दुनिया, निगोद में से कभी नहीं निकले ऐसे जीव को भी मैं किस नय से भेद जानूँ? आहाहा! अन्तर की महिमा की बात है, प्रभु! आहाहा! यह शक्तिवान है परन्तु मानो प्रगट ही है - ऐसा कहते हैं। शक्तिवान है। आहाहा! जिसे प्रगट दृष्टि में आया, उसे शक्तिवान प्रगट है; वैसे ही सब भगवान कुबुद्धि को भी प्रगट हैं। मैं किस नय से उसे हीन, न्यून शक्तिवाला और सिद्ध में किस नय से अन्तर जानूँ? गजब बात है! ताराचन्दजी! गजब बात है! आहाहा! साधारण बात नहीं, प्रभु! यह कोई कथा नहीं है। आहाहा!

यह तो तीन लोक के नाथ वीतरागदेव के पेट में से (अन्तर अभिप्राय में से) निकली हुई वाणी है। आहाहा! दिव्यध्वनि, दिव्यध्वनि ऐसा कहती है। आहाहा! प्रभु! तुझमें अशुद्धता कुबुद्धि में किस नय से अन्तर जानूँ। आहाहा! मुनिराज कहते हैं, वह भगवान कहते हैं। भगवान से बिलकुल हीन-अधिक नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? मुनिराज कहते हैं, इसलिए फेरफार (है ऐसा नहीं है)। तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि में ऐसा आया था कि शुद्ध और अशुद्ध जो पर्याय है, ऐसा जो जीव है, उन दोनों में कुछ भी भेद किस प्रकार से, किस प्रकार से बचाव करूँ? किस प्रकार से बचाव करके (अन्तर) जानूँ। आहाहा! गजब है।

(उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।) अन्दर में कोई भेद नहीं है। आहाहा! यह दृष्टि जिसे बैठ गयी, उसे अल्पकाल में सिद्ध परमात्मा होने की तैयारी हो गयी। परमात्मा (अर्थात्) भव का अन्त। भव का अनादि-सान्त अन्त और मोक्ष सादि-अनन्त। वह भी ऐसा कहा... सन्तों ने गजब बात (की है कि) पूर्ण पर्याय सिद्ध हुई, द्रव्य तो अलौकिक अन्तर महा चमत्कारिक अनन्त गुण से भरा है न! तो सिद्ध की पर्याय से विशेष शुद्धता निकलेगी या नहीं? वहाँ बस कर, पर्याय के लिये वहाँ बस कर। आहाहा! द्रव्य के लिये कुछ कहना नहीं है, आहाहा! पर्याय के लिये वहाँ बस कर, प्रभु! पूर्ण सिद्ध होने के पश्चात् भी निर्मलता की थोड़ी वृद्धि होगी, यह बात रहने दे, प्रभु! पर्याय में यह बात बस हो गयी। आहाहा! परन्तु द्रव्य की जो बात हम करते हैं, प्रभु! आहाहा! इतना सामर्थ्य और इतनी शक्ति है, तो सिद्ध पद (प्रगट होने के पश्चात्) भी शुद्धि बढ़ जाये - ऐसा है या नहीं? प्रभु! ऐसा नहीं है। वह पर्याय है। पर्याय पूर्ण हो गयी, पश्चात् बात पूरी हो गयी।

यहाँ तो वस्तु में कुछ भी अन्तर नहीं गिनते तो पर्याय में भी अन्तर नहीं गिनते। आहाहा! व्यवहारनय तो मानो कुछ है ही नहीं। कथनमात्र है। यह तो भाई! कलश-टीका

में आता है न ? कथनमात्र, व्यवहारनय कथनमात्र -ऐसा आता है। कलश-टीका में है। आहाहा! अब, यह व्यवहारनय सामने हो गया है। यहाँ कहते हैं कि वह व्यवहारनय है या नहीं - हम नहीं जानते। प्रभु! तू आनन्द है न! तुझमें अनन्त भगवत्स्वरूप है न! तू साक्षात् भगवान है! साक्षात् सिद्ध हुए और तू साक्षात्, उनमें किस प्रकार भेद करूँ ? किस नय से मैं कुछ भी भेद कहूँ ? आहाहा! गजब बात है।

साक्षात् परमात्मा सिद्ध हुए और तेरा आत्मा, (इन दो में) मैं किस नय से कुछ भी भेद, कुछ भी भेद, कुछ भी भेद, (जानूँ) ? गजब बात! आहाहा! दिगम्बर सन्त, केवली के पथानुगामी हैं। वे अल्प काल में केवल (ज्ञान) लेनेवाले हैं। एकाधभव (बाकी है), यह पंचम काल है, इसलिए केवलज्ञान नहीं हुआ, बाकी तो स्वर्ग में जाकर, मनुष्य होकर केवल (ज्ञान) लेनेवाले हैं। आहाहा! इतनी गम्भीरता अन्दर भासती है। वह गम्भीरता शब्दों में नहीं कह सकते। प्रभु! तू इतना बड़ा है, तेरी महिमा में हीनपन की भाषा तो नहीं होती परन्तु हीनता किस प्रकार जानूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सभी भगवान हैं। तुझमें और सिद्ध में, प्रभु! कुछ भेद, कुछ भी भेद (किस प्रकार जानूँ) ? गजब शब्द हैं। आहाहा! उन दोनों में कुछ भी भेद, कुछ भी जुदाई, कुछ भी भिन्नता किस नय से जानूँ ? मैं किस नय से जानूँ ? आहाहा! गजब किया है! व्यवहार पक्षवालों को कठिन लगता है। आहाहा! ऐसी बात! इतने शब्द में बहुत भरा है, पण्डितजी! बहुत भरा है। आहाहा! अकेला परमात्मा तैरता है। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... दृष्टि में ध्रुव तैरता है। तो यह कहते हैं कि जगत के प्राणी को मैं किस नय से हीन कहूँ ? किस नय से संसारी कहूँ ? आहाहा! गजब बात है प्रभु! भाषा थोड़ी, भाव का पार नहीं होता। आहाहा! इस भाषा की गम्भीरता... ! आहाहा! इतने में २२ मिनिट हो गये। आहाहा! अरे! एक सैकेण्ड के अन्दर, एक सैकेण्ड भी नहीं, एक समय में अन्तर पड़ता है तो यह अन्तर पड़ता है, वह मैं किस प्रकार अन्तर मानूँ ? आहाहा! एक समय में समयान्तर हो जाता है। आहाहा!

श्रीमद् ने लिखा है कि समकित समयान्तर में हो जाता है। एक समय के अन्तर में (हो जाता है)। पहले समय में मिथ्यात्व, दूसरे समय में समकित। आहाहा! अरे! अनन्त काल से मिथ्यात्व का सेवन (चलता है और तुम कहो) एक समय में (बदल जाये) ? परन्तु प्रभु! उसमें कहाँ मिथ्यात्व था ? अन्दर में मिथ्यात्व था ही कहाँ ? आहाहा! जो

अन्दर में है, वह अन्दर से निकला। अन्दर जो माल भरा था, वह निकला। इसी प्रकार सब भगवान माल से भरपूर हैं। आहाहा! गजब बात है। डालचन्दजी! इन सब सेठियाओं को यह सब बात समझने की है। आहाहा! गजब बात है। फिर ऐसा करके कितने ही सोनगढ़ का उड़ा दें, लो! यह सब है, भाई! है अवश्य, भाई! बापू! व्यवहारनय का विषय है, व्यवहारनय है, (उसका) विषय है परन्तु उसकी कोई गिनती नहीं। अन्तर निश्चय के समक्ष उसकी गिनती क्या? आहाहा! कलश टीकाकार ने तो ऐसा कह दिया है कि व्यवहारनय तो कथनमात्र है। ऐसा पाठ है। यहाँ है या नहीं? कलश-टीका पाँचवें कलश में है। **जितना कथन।** व्यवहारनय का अर्थ किया, जितना कथन। वह तो कथन है। वस्तु में कुछ अन्तर नहीं, प्रभु! तू बाहर के इस शरीर, इसकी चेष्टायें, इसकी उम्र, इसके रंग-रूप को न देख... आहाहा! और तुझमें हीनता है, वह न देख। हम कहते हैं कि किस नय से तुझमें हीनता कहें? आहाहा! गजब बात है। किस नय से मैं तुझमें हीनता कहूँ? शरीरवाला तो है ही नहीं, रंग वाला तो है ही नहीं, परद्रव्य को तो कभी छूता नहीं परन्तु किस नय से तेरी हीन दशा कहूँ। सिद्ध-अपेक्षा अल्पदशा किस नय से कहूँ? आहाहा! गजब है। **जितना कथन।** व्यवहारनय का अर्थ किया है। व्यवहारनय अर्थात् जितना कथन। आहा! वह तो कथनमात्र है। आहाहा! कठिन लगे ऐसा है परन्तु प्रभु! तेरे घर की बात है न! आहा!

श्रोता : जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रीतिभोज करा रहे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुनिराज बात करते हैं। प्रीतिभोज! सवेरे तो जीमन हुआ। आहाहा! अपना कुछ भी आग्रह यदि रहे तो अपनी चीज़ जानने में नहीं आती तो पर की चीज़ भी मेरे जैसी है, ऐसा जानने में नहीं आता, प्रभु! ऐसा कहते हैं।

यह तो कहते हैं, मैं... ऐसा कहा न? आहाहा! कुछ भी भेद-सिद्ध और संसारी में कुछ भी भेद... आहाहा! **कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** कहूँ-ऐसा नहीं आया। मैं किस नय से जानूँ (-ऐसा आया है)। आहा! एकान्त लगे ऐसा है, प्रभु! अकेला माहात्म्य ही वर्णन किया है। अकेली चीज़ का (माहात्म्य)। ४८ गाथा; ४७ हुई न?

गाथा-४८

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया।।४८।।

अशरीरा अविनाशा अतीन्द्रिया निर्मला विशुद्धात्मानः।
यथा लोकाग्रे सिद्धास्तथा जीवाः सन्सृतौ ज्ञेयाः।।४८।।

अयं च कार्यकारणसमयसारयोर्विशेषाभावोपन्यासः। निश्चयेन पञ्चशरीर-प्रपञ्चाभावादशरीराः, निश्चयेन नरनारकादिपर्यायपरित्यागस्वीकाराभावादविनाशाः, युगपत्परमतत्त्व-स्थितसहजदर्शनादिकारणशुद्धस्वरूपपरिच्छित्तिसमर्थसहजज्ञानज्योतिरप-हस्तितसमस्त-सन्शयस्वरूपत्वादतीन्द्रियाः, मलजनकक्षायोपशमिकादिविभावस्वभावा-नामभावान्निर्मलाः, द्रव्यभावकर्माभावात् विशुद्धात्मानः यथैव लोकाग्रे भगवन्तः सिद्धपरमेष्ठिनस्तिष्ठन्ति, तथैव सन्सृतावपि अमी केनचिन्निश्चयबलेन सन्सारिजीवाः शुद्धा इति।

(हरिगीत)

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

अन्वयार्थ :— [यथा] जिस प्रकार [लोकाग्रे] लोकाग्र में [सिद्धाः] सिद्धभगवन्त [अशरीराः] अशरीरी, [अविनाशाः] अविनाशी, [अतीन्द्रियाः] अतीन्द्रिय, [निर्मलाः] निर्मल और [विशुद्धात्मानः] विशुद्धात्मा (विशुद्धस्वरूपी) हैं, [तथा] उसी प्रकार [संसृतौ] संसार में [जीवाः] (सर्व) जीव [ज्ञेयाः] जानना।

टीका :— और यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथनहै।

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं, निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं, परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप

कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं, मलजनक क्षायोपशमिकादि विभावस्वभावों के अभाव के कारण 'निर्मल' हैं और द्रव्यकर्मों तथा भावकर्मों के अभाव के कारण 'विशुद्धात्मा' हैं; उसी प्रकार संसार में भी यह संसारी जीव किसी नय के बल से (किसी नय से) शुद्ध है।

गाथा-४८ पर प्रवचन

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया।।४८।।

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

भव में लीन हैं, वे भी ऐसे हैं – ऐसा कहते हैं। भाषा ली है 'भवलीन' (ऐसी भाषा ली है)। उसमें (कलश में) कुबुद्धि लिये थे। आहाहा! इस प्रकार से बात की। कुबुद्धिरूप से जरा सा ख्याल किया। यहाँ संसारी कहा, परन्तु कहते हैं कि भवलीन (और सिद्ध में) किस प्रकार से अन्तर कहूँ? अन्तर तो चैतन्य भगवान, अन्तर (में) तो पूर्ण सम्पदा का धनी बिराजमान है। ऐसा वैभव तो बाहर दुनिया में कहीं है ही नहीं। ऐसा वैभव तुझमें है। आहाहा!

यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। आहाहा! कार्यसमयसार (अर्थात्) सिद्ध। कारणसमयसार (अर्थात्) आत्मद्रव्य। आहाहा! एक शब्द ऐसा आता है, बहिन में (बहिनश्री के वचनामृत में) आता है कि अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग पारायण कर ले, ऐसी आत्मा की ताकत है। बारह अंग का पर्यटन अन्तर्मुहूर्त में कर दे! गजब बात है! एक समय में जाने, वह भिन्न वस्तु, परन्तु वह असंख्य समय में बारह अंग की बात पर्यटन कर ले। बहिन में है। गोम्मटसार शास्त्र में भी है। यह बात जानने में आयी, उसके अनन्तवें भाग कथन में आयी। आहाहा! उसके अनन्तवें भाग तो सुनने में आयी। आहाहा! उससे अनन्तवें भाग रचना हुई। पंचाध्यायी में तो ऐसा कहते हैं कि

बारह अंग में तो स्थूल बात है। पंचाध्यायी में ऐसा पाठ है। बारह अंग, बारह अंग से विशेष श्रुतज्ञान क्या होगा? आहाहा! बारह अंग में स्थूल बात आयी है। आहाहा! तीन लोक के नाथ की सूक्ष्म बातें उसमें रह गयी है। आहाहा! वह तो अनुभवगम्य है। चैतन्य की चमत्कारिक चीज़ चमत्कार देखे उसे पता पड़े। बाकी वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता। आहाहा!

वह कहते हैं। **यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं,...** आहाहा! शरीर को प्रपंच कहा। शरीर के प्रपंच। शरीर की अनेक पर्याय होती है, वह आत्मा के आधीन नहीं है। आहाहा! उस **शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं।**

निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,... आहाहा! गति का त्याग और सिद्धस्वरूप का ग्रहण भी जिसमें नहीं... आहाहा! पर के त्याग-ग्रहण तो उसमें है ही नहीं। पैसा, परमाणु, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, मकान, पैसे का तो आत्मा को ग्रहण भी नहीं और आत्मा को त्याग भी नहीं। त्याग-ग्रहण रहित आत्मा भगवान है। आहाहा! यह सैंतालीस शक्ति में आता है। ओहोहो! समयसार, गजब बात है! एक-एक श्लोक और एक-एक कलश (गजब है)!

श्रोता : नियमसार स्वयं के लिये बनाया, इसलिए सूक्ष्म में सूक्ष्म बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं के लिये बनाया है। आहाहा!

निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण... मनुष्य का शरीर ग्रहण और त्याग आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! मनुष्य का शरीर, नारकी का शरीर, देव का शरीर, तिर्यंच का शरीर ग्रहण करना और छोड़ना, यह आत्मा में तीन काल में है ही नहीं। आहाहा! परद्रव्य का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। आत्मा में ऐसा गुण है कि पर के ग्रहण-त्यागरहित ही वह स्वभाव त्रिकाल बिराजता है। आहाहा!

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं, निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण

के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,... आहाहा! नारकी आदि गति की पर्याय जो उदयभाव। यह मनुष्य (शरीर), वह मनुष्यगति नहीं। यह मनुष्य, वह मनुष्यगति नहीं। यह मनुष्य तो जड़ है। यह तो पारिणामिकभाव से है और मनुष्यगति उदयभाव से है। आहाहा! यह उदयभाव तो आत्मा की पर्याय में है। शरीर तो पारिणामिक भाव से त्रिकाल द्रव्य-गुण-पर्याय (स्वरूप है)। द्रव्य-गुण और पर्याय त्रिकाल पारिणामिकभाव से है। आहाहा!

भगवान आत्मा... आहाहा! कहते हैं **नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** आहाहा! मनुष्यभव ग्रहण किया और मनुष्यभव छोड़ा, प्रभु! (यह) आत्मा में नहीं। आहाहा! व्यवहारनय की तो मसकरी की है। पहली बारह गाथा में मसकरी की है। पहले आया न? भाई! बारह गाथा में। आहाहा! इसमें है। बारह गाथा है न?

परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,... आहाहा! इन्द्रिय को स्पर्शा ही नहीं, जड़ इन्द्रिय को स्पर्शा ही नहीं। भावेन्द्रिय पर्याय में है, उसे यहाँ गिनने में नहीं आया। (समयसार) ३१ गाथा में कहा। **जो इंदिये जिणित्ता** भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और भगवान—सब इन्द्रिय में जाते हैं। भगवान की वाणी और भगवान, पूरा लोक इन्द्रिय में जाता है। इस लोक की ओर का लक्ष्य छोड़कर अपने अतीन्द्रिय (स्वरूप में) जहाँ आता है, **णाणसहावाधियं मुणदि आदं** अपने ज्ञानस्वभाव से जो अधिक है — ऐसा जो **मुणदि** अर्थात् जानता है। **तं जिदिंदियं साहू** उसे सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय कहते हैं। आहाहा! इस इन्द्रिय को जीता और बाहर का भोग नहीं लिया, ऐसा नहीं। आहाहा! द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय - तीन से भिन्न ज्ञानस्वभाव का जिसने अनुभव किया, वह इन्द्रिय से पार है। आहाहा! यहाँ भी यह कहा। **सहज ज्ञानज्योति द्वारा समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं।**

विशेष कहेंगे.. (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)